भारतीय ज्योतिषशास्त्र और ताजिकशास्त्र परंपरा में पारस्परिक विनिमय के विविध आयाम

डॉ. प्रियंका जैन
पीएच्.डी.(ज्योतिष),
संस्कृत विभाग,दिल्ली विश्वविद्यालय,दिल्ली-7

डॉ. राजीव रंजन
सहायक आचार्य (ज्योतिष)
संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-7

(शोध सारांश (Abstract

भारतीय ज्योतिषशास्त्र विश्व की प्राचीनतम वैज्ञानिक एवं दार्शनिक परम्पराओं में से एक है, जिसने कालान्तर में अनेक बाह्य परम्पराओं के साथ संवाद स्थापित करते हुए अपने स्वरूप को समृद्ध किया। ताजिकशास्त्र ऐसी ही एक महत्वपूर्ण परम्परा है, जिसका उद्भव अरबी-फारसी ज्योतिषीय परम्पराओं में हुआ और मध्यकाल में भारतीय ज्योतिष के साथ इसके गहन अन्तर्सम्बन्ध विकसित हुए। भारतीय ज्योतिष और ताजिकशास्त्र के मध्य यह पारस्परिक विनिमय केवल तकनीकी स्तर तक सीमित नहीं रहा, अपितु दार्शनिक, सांस्कृतिक तथा गणनात्मक आयामों में भी दृष्टिगोचर होता है। ताजिक पद्धति ने भारतीय ज्योतिष में वर्षफल, सहम,मुन्था,दीप्तांश,दलीलद ग्रह इत्थशाल आदि षोडश योग,सहम , आदि नवीन संकल्पनाओं का समावेश किया, वहीं भारतीय ज्योतिष की ग्रह-दृष्टि, भाव-व्यवस्था तथा कर्म-सिद्धान्त जैसी अवधारणाओं ने ताजिक पद्धति को भारतीय सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में अनुकूलित किया।

प्रस्तुत शोधपत्र में भारतीय ज्योतिषशास्त्र और ताजिकशास्त्र के ऐतिहासिक विकास, पारस्परिक आदान-प्रदान, ग्रन्थ-परम्परा, तकनीकी विशेषताओं तथा सांस्कृतिक प्रभावों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। शोधपत्र में नीलकण्ठ, बलभद्र, समरसिंह आदि आचार्यों के योगदान का मूल्यांकन करते हुए यह प्रतिपादित किया गया है कि ताजिकशास्त्र भारतीय ज्ञानपरम्परा में एक समन्वयवादी दृष्टिकोण का परिचायक है। यह अध्ययन इस तथ्य को भी उद्घाटित करता है कि भारतीय ज्योतिष ने बाह्य प्रभावों को आत्मसात् कर अपनी मौलिकता को अक्षुण्ण रखते हुए एक नवीन संश्लेषण का निर्माण किया।

प्रमुख शब्द)Keywords)

भारतीय ज्योतिष, ताजिकशास्त्र, वर्षफल, मुन्था , सहम,दीप्तांश , फलित ज्योतिष, सांस्कृतिक समन्वय

ज्योतिषशास्त्र मानव सभ्यता की प्राचीनतम ज्ञान-विज्ञान की पद्धतियों में सर्वप्रमुख है। यह केवल ग्रह-नक्षत्रों का अध्ययन नहीं, अपितु जीवन के विविध आयामों का दार्शनिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विश्लेषण भी प्रस्तुत करता

है। भारतीय **ज्योतिषशास्त्र** (वैदिक ज्योतिष) और **ताजिकशास्त्र** (ताजिक ज्योतिष, मध्य एशियाई परम्परा) दोनों ही नियति, कालचक्र, ग्रह गोचर,दशा और मानव जीवन पर ग्रहों और राशियों के प्रभाव पर आधारित परंपराएँ हैं।ऐसा माना जाता है कि मध्यकालीन इतिहास में तत्कालीन भारतवर्ष और ताजिकिस्तान (मुख्यतः सैमकैंड, ख़ीवा और बाकू जैसे क्षेत्रों में) के बीच **व्यापक सांस्कृतिक और बौद्धिक आदान-प्रदान** हुआ, जिसमें से ज्योतिषशास्त्र दोनों संस्कृतियों के बीच साझा समझ और संश्लेषण का एक प्रमुख क्षेत्र सिद्ध हुआ।[1] इस शोध-पत्रमें भारतीय ज्योतिषशास्त्र और ताजिकशास्त्र के बीच सांस्कृतिक व शास्त्रीय सिद्धांतों के आदान-प्रदान के ऐतिहासिक, दार्शनिक और तकनीकी आयामों का विश्लेषण प्रस्तावित है।

भारतीय ज्योतिषशास्त्र-भारतीय ज्योतिषशास्त्र (ज्योतिषविद्या) वेदों से उत्पन्न एक समग्र जीवन-दृष्टि है। वेदांग ज्योतिष, मुख्यत: *गणितीय खगोल विज्ञान* के सिद्धान्तों पर आधारित है, जिसने कालगणना, पंचांग निर्माण, नक्षत्र, ग्रह गोचर, दशा प्रणाली, ग्रहों के योगकारकत्व तथा कर्मफल सिद्धांत को विकसित किया। भारतीय ज्योतिषशास्त्रीय परंपरा में ग्रहों का मानवीय जीवन पर प्रभाव विश्लेषण ,जन्मकुंडली का विस्तृत अध्ययन ,दशा आधारित शुभाशुभ फलविश्लेषण ,मुहूर्त चयन जैसे विशिष्ट तकनीकी तथा दार्शनिक आयाम सम्मिलित हैं। इस शास्त्र का *वैदिक धर्म, दर्शन और संस्कृति* से गहन सम्बंध है।**ताजिक ज्योतिषशास्त्र**-ताजिक या **ताजिकिस्तान क्षेत्रीय ज्योतिष**, मुख्यतः मध्य एशिया की इस्लामी-संस्कृति के प्रभाव में विकसित हुआ। इसे *ताजिक (Tajik)* कहा जाता है, जिसका अर्थ मूलतः 'ताजिक भाषी' या 'मिडिल एशियाई' परंपरा है। ताजिक शास्त्र में इस्लामी खगोल सिद्धांत ,अरब-फारसी खगोल गणना पद्धतियाँ ,जातक ज्योतिष ,नवीन ग्रहों की परिकल्पना ,नवीन ग्रह दृष्टि-मैत्री,विशिष्ट ग्रहयोग तथा नवीन सिद्धांत विकसित हुए। भारतीय ज्योतिषशास्त्रीय पद्धति की अपेक्षा ताजिक पद्धति में ग्रहों का चरित्र, राशिचक्र की गणना तथा फलादेश में इस्लामी दार्शनिक प्रभाव तथा फलादेश की सूक्ष्मता अपेक्षाकृत अधिक परिलक्षित होती है।

प्राचीन आदान-प्रदान के ऐतिहासिक साक्ष्य-भारत और मध्य एशिया के बीच प्राचीन काल से ही विविध प्रकार का **सांस्कृतिक एवं बौद्धिक आदान-प्रदान** होता रहा है। *रास्तों का व्यापार* तथा *विद्या-यात्राएँ* दोनों तरफ से ज्ञान के आदान-प्रदान हेतु माध्यम बनीं।इस क्रम में 8वीं से 12वीं शताब्दी तक **तुर्क, फारसी, मध्य एशियाई विद्वानों** का भारत आगमन हुआ। भारत से *गणित, खगोल, आयुर्वेद, दर्शन* जैसे विषय प्रवाहित हुए। मध्य एशिया से *अरबी-फारसी विज्ञान, खगोलशास्त्र, दार्शनिक लेख* भारत आए। इस प्रकार, ताजिक और भारतीय ज्योतिष के बीच **सिद्धान्तीय और तकनीकी विनिमय** के स्पष्ट संकेत प्रकट होते हैं।

दोनों ज्योतिषीय परम्पराओं के दार्शनिक आधार

जहाँ भारतीय ज्योतिषशास्त्र का आधार *ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद* में प्रतिपादित नक्षत्र और ग्रह आदि आकाशीय पिण्डों का अध्ययन है, जो कर्म और मोक्ष जैसे दार्शनिक विषयों से संबंधित है। वहीं दूसरी ओर, ताजिक ज्योतिष में *इस्लामी दर्शन, अरब-फारसी खगोलीय गणनाएँ* प्रमुख हैं। अतः दोनों की उत्पत्ति और दार्शनिक आधार में भिन्नता है, फिर भी निम्नलिखित दो प्रमुख कारण हैं जो सांस्कृतिक विनिमय के आधार बने-प्रथम तो गणितीय व खगोलीय सिद्धान्तों के साझे मानदण्ड और दूसरा ग्रह-राशि-नक्षत्र की सर्वदेशीय मान्यता ।

तकनीकी सिद्धांतों के आदान-प्रदान व जन्मकुंडली और ग्रह-फल का विश्लेषण-भारतीय ज्योतिषशास्त्र में जन्मकुंडली का निर्माण एवं फलादेश के सिद्धान्त अत्यंत विशद हैं- *लग्न, भाव, दशा, अंतर्दशा, योग* तथा राशि-ग्रह*गुणस्वरुप आदि फल* कथन के गहन विश्लेषण का आधार होते हैं। जबकि ताजिक शास्त्र में उपरोक्त विषयों के अतिरिक्त अन्य गणितीय प्रमुख बिंदु यथा –मुन्था ,सहम,दीप्तांश ,विशिष्ट षोडश योग,ग्रहों के गुण, मित्रता,दृष्टि आदि में भेद दृष्टिगत होता है।साथ ही जन्म-ज्योतिष की गणना अधिक *गणितीयप्रे,क्षणीय* ,सूक्ष्म व वार्षिक पद्धति पर आधारित हो जाती है।भारतीय ज्योतिष ने दशा प्रणाली, भाव और योगों की फलकथन जैसी तकनीकों को विकसित किया, जिसने ताजिक विद्वानों को भी प्रभावित किया।

खगोलीय गणना प्रौद्योगिकी का प्रभाव- मध्य एशिया के विद्वानों ने *अरबी-फारसी गणितीय गणना तकनीकों* को भारतीय सिद्धांतों के आधार पर विकसित किया, जैसे-त्रिकोणमिति ,बाइनोमियल समीकरण ,सटीक गोचर गणना आदि।ये तकनीकें भारतीय खगोलीय गणना को भी प्रभावित करती हैं और भारतीय विद्वानों ने भी इन्हें संशोधित कर अपने पंचांग निर्माण में समायोजित किया।

दार्शनिक और सांस्कृतिक समन्वय के साथ-साथ कर्म-फल एवं नियति का साझा दृष्टिकोण-

भारतीय परंपरा में *कर्म सिद्धांत* और *पुनर्जन्म की व्याख्या* प्र मुख है। जबकि ताजिक पद्धति में नियति के साथ *मुख्यतः गणितीय परिणाम और ग्रह-दशा* का प्रभाव अधिक माना जाता है। दोनों पद्धतियाँ मानती हैं कि-ग्रह-नक्षत्र नियति का निर्धारण करते हैं, परंतु मानव के कर्म तथा निर्णय भी फल को प्रभावित करते हैं।इस प्रकार, दोनों परंपराएँ दर्शन के स्तर पर तत्वगत रूप से मेल खाती हैं।

भाषाई और सांस्कृतिक समावेशन

ताजिक शास्त्र में अरबी-फारसी शब्दावली का प्रचलन रहा है, जैसे-इक्कबाल,रद्द,आदि।भारतीय ज्योतिष में संस्कृत शब्दों का प्रमुख स्थान है। इन भाषाई त्रिवेणी से सांस्कृतिक विनिमय का एक नया आयाम स्पष्ट होता है -विद्वानों ने विचारों को **भाषा, लेखन और अनुवाद के माध्यम से** साझा किया है।

आधुनिक शोध एवं तुलनात्मक अध्ययन

आज की स्थिति में भारतीय और ताजिक ज्योतिषीय परंपराओं की तुलना में निम्नलिखित बिंदु स्पष्ट हैं।भारतीय ज्योतिष का **वैदिक आधार**, कर्मसिद्धान्त, दर्शन,पुनर्जन्म और *दशा-भूत योग प्रणाली* विशिष्ट है। वहीं ताजिक ज्योतिष का **गणितीय-खगोलीय विश्लेषण**, और अरब-फारसी गणना पद्धतियाँ पारंपरिक रूप से विकसित हुई हैं। दोनों ही परंपराएँ *समय, गति, ग्रह गोचर और फलकथन* जैसे मूलभूत सिद्धांत साझा करती हैं। इन सबके बाद भी ताजिक शास्त्र के अनेक सिद्धांत सर्वथा नवीन हैं जिनका विकास ताजिकशास्त्र के विद्वानों ने अपनी मेधाशक्ति और अनुभव के आधार पर किया है ।इन प्रमुख सिद्धांतों को क्रमशः प्रस्तुत करके पारस्परिक प्रभाव का मूल्यांकन करना संभव हो सकता है।

ताजिकशास्त्र के षोडश योग- ताजिक ज्योतिष परम्परा में *योग* की संकल्पना अत्यंत केंद्रीय एवं निर्णायक मानी गई है। जन्मपत्रिका कुण-जातक)ुडली (वर्षफल) तथा वर्षपत्रिका (दोनों के फलनिर्णय में योगों की भूमिका आधारभूत

होती है। फलित का समग्र स्वरूप ग्रहों की पृथकपृथ-क स्थिति से नहीं, अपितु उनके पारस्परिक सम्बन्धों, दृष्टियों, वेगों तथा संयोगवियोग की विशिष्ट स्थितियों से निर्मित योगों पर निर्भर करता है। ज-ब कोई योग अपने आवश्यक तत्त्वों - जैसे ग्रहों की पारस्परिक दृष्टि , अंशात्मक समीपता)orb), बल सापेक्षता तथा भावाधिष्ठान-की पूर्णता को प्राप्त कर लेता है, तब उससे संबद्ध फल का उद्भव अनिवार्यतया माना गया है। इस प्रकार ताजिक पद्धति में योग केवल सांकेतिक संरचनाएँ नहीं, बल्कि दैव) काल के सक्रिय संकेतक-dynamic indicators) हैं।ताजिक शास्त्र के आचार्यों ने विशेष रूप से *षोडश योगों*[2] का प्रतिपादन किया है, जिन्हें वर्षफलत महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इन निर्णय में अत्यं-है (प्रभावित-यवन) योगों की नामावली स्पष्टतः विदेशीय, क्योंकि ताजिक परम्परा का विकास मध्य एशियाई एवं अरबीफारसी ज्योतिषीय धाराओं के संस्पर्श से- हुआ। तथापि, इन योगों से निष्पन्न होने वाले फलनिर्णय में भारतीय - फलित ज्योतिष के पारम्परिक सिद्धान्तों-जैसे शुभाशुभ ग्रहस्वभाव, भावाधिपत्य, दृष्टितत्त्व-, बलाबल तथा कर्मफल मीमांसा-का प्रत्यक्ष और गहन प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। यह तथ्य इस परम्परा के सांस्कृतिक समन्वय का सशक्त प्रमाण है। ताजिक वर्षफलग्रहों की पारस्परिक दृष्टि निर्माण की संकल्पना-पद्धति में योग-, अंश समीपता-(दीप्तांश), गत्यात्मक भेद (मन्दगामी–शीघ्रगामी), बलाबल तथा भावाधिष्ठान के समन्वित विश्लेषण पर आधारित है। विशेषतः लग्नेश लग्न क-वर्ष)ा स्वामीके परस्पर सम्बन्ध को निर्णायक (विवेच्य भाव का स्वामी) और कार्येश (। निम्नलिखित षोडश योग वर्षकुण्डली में शुभाशुमाना गया हैभ फलनिर्णय के प्रमुख उपकरण हैं-। ताजिक शास्त्र में उल्लिखित षोडश प्रमुख योग निम्नलिखित हैं-

1. **इक्कबाल योग** यदि समस्त ग्रह 'केन्द्र'(1, 4, 7, 10) एवं 'पणफर'(2, 5, 8, 11) भावों में अवस्थित हों और 'आपोक्लिम'(3, 6, 9, 12) रिक्त रहें, तो इक्कबाल योग का निर्माण होता है।[3] यह विन्यास ग्रहबल के समुचित वितरण का द्योतक है, जिसके परिणामस्वरूप राज्यलाभ, प्रतिष्ठा, वित्तवृद्धि और सांसारिक सुख की - प्राप्ति मानी जाती है। वर्षफल में यह योग उन्नयनशील प्रवृत्तियों को सक्रिय करता है।
2. **इन्दुवार योग** जब वर्षकुण्डली के सभी ग्रह) भावों 'आपोक्लिम'3, 6, 9, 12) में स्थित हों, तब इन्दुवार योग निर्मित होता है। यह विन्यास स्थिरता के अभाव और परोक्ष संघर्ष का संकेत देता है। फलतः वर्ष भर मानसिक उद्वेग, पारिवारिक क्लेश, स्त्रीपुत्र से कष्ट-, पदहानि अथवा अवनति की सम्भावना रहती है।-[4] यह योग सामान्यतः प्रतिकूल एवं क्लेशप्रद माना गया है।
3. **इत्थशाल योग** ताजिक पद्धति का केन्द्रीय योग है 'इत्थशाल', जो लग्नेश एवं कार्येश के मध्य अंश-संबंध पर आधारित है। यदि शीघ्रगामी ग्रह-समीपता और दृष्टि, मन्दगामी ग्रह से न्यून अंश का होकर उससे संयोग की ओर अग्रसर हो, तो इत्थशाल योग बनता है। इसके तीन भेदपूर्णेत्थशाल—, वर्तमान इत्थशाल एवं भविष्य इत्थशालग्रहों की वास्तविक अंशगत दूरी के आधार पर माने गए हैं। यह योग कार्यसिद्धि—, उद्देश्य-पूर्ति तथा नियोजित योजनाओं के सफल निष्पादन का द्योतक है।
4. **ईसराफ योग (मूसरिफ)** जब लग्नेशकार्येश के संबंध में शीघ्रगामी ग्रह–, मन्दगामी ग्रह से अधिक अंश का होकर उससे पृथक होने की स्थिति में हो, तब ईसराफ योग बनता है। यह इत्थशाल का प्रतिलोम रूप है और कार्यविघटन-, अवसर च्युतता तथा प्रयत्नों के निष्फल-होने का सूचक है। इसे कार्यनाशक योग कहा गया है।
5. **नक्त योग** यदि लग्नेश और कार्येश में प्रत्यक्ष दृष्टिसंबंध न हो-, किन्तु उनके मध्य स्थित कोई शीघ्रगामी ग्रह अपने दीप्तांश के भीतर दोनों को दृष्ट कर 'संक्रमण-प्रकाश'(transfer of light) करे, तो नक्त योग बनता है।

इस स्थिति में मध्यस्थ ग्रह पूर्व ग्रह से प्रभाव ग्रहण कर उत्तर ग्रह को संप्रेषित करता है, जिससे इत्थशालसदृश - फल उत्पन्न होता है। यह योग परोक्ष सहायता से कार्यसिद्धि का द्योतक है।

6. **यमय योग** नक्त के समान, यदि मध्यस्थ ग्रह मन्दगामी हो और वह अपने दीप्तांश के भीतर लग्नेशकार्येश – दोनों से सम्बद्ध हो, तो यमय योग निर्मित होता है। यहाँ मन्दग्रह शीघ्रग्रह से प्रभाव लेकर दूसरे ग्रह को प्रदान करता है। यह भी सहयोगआधारित कार्यसिद्धि का सूचक है-, किन्तु इसकी गति अपेक्षाकृत मंद एवं विलंबित फलदायी मानी जाती है।
7. **मणऊ योग** यदि मंगल या शनि जैसे क्रूर ग्रह, किसी शीघ्रगामी ग्रह के दीप्तांश में स्थित होकर कार्येश से इत्थशाल करें तथा उस शीघ्रग्रह पर केन्द्रीय दृष्टि)1, 4, 7, 10) रखें, तो मणऊ योग बनता है। इस स्थिति में क्रूर ग्रह कार्येश के प्रभाव को अवरुद्ध कर देता है, फलतः कार्यविघ्-न, हानि अथवा निराशा उत्पन्न होती है। यह कार्यहन्ता योग है।
8. **कम्बूल योग** जब लग्नेशकार्येश में इत्थशाल हो तथा चन्द्रमा उनमें से किसी एक से भी इत्थशाल करे–, तब कम्बूल योग बनता है। चन्द्रमा की स्थिति के अनुसार यह उत्तम, मध्यम या अधम फल प्रदान करता है। यदि चन्द्र उच्च या स्वक्षेत्र में होकर शुभ ग्रहों से इत्थशाल करे तो उत्तम; शत्रुक्षेत्री से मध्यम-; तथा नीच या अस्त ग्रह से संबंध होने पर अधम फल प्राप्त होता है। यह योग संवेदनात्मक एवं मनोवैज्ञानिक स्तर पर भी प्रभावकारी है।
9. **गौरिकम्बूल योग** यदि लग्नेशकार्येश में इत्थ–शाल हो परन्तु चन्द्रमा ’शून्यमार्ग‘[5] में होकर प्रत्यक्ष इत्थशाल न करे, किन्तु राशिपरिवर्तन के उपरांत किसी स्वक्षेत्री या उच्च ग्रह से इत्थशाल स्थापित करे-, तो उस ग्रह की सहायता से गौरिकम्बूल योग बनता है। यह अप्रत्यक्ष सहयोग से कार्यसिद्धि का संकेत देता है।

10.खल्लासर योग जब लग्नेशकार्येश में इत्थशाल हो–, पर चन्द्र शून्यमार्ग में स्थित होकर उनसे पृथक रहे और किसी प्रकार का सहायक संबंध न स्थापित करे, तब खल्लासर योग बनता है। यह कम्बूल के प्रभाव को नष्ट कर देता है। फलतः रोग, मानसिक व्यथा, पारिवारिक संकट और संततिसंबंधी कष्ट की आशंका रहती है।-[6]

11.रद्द योग यदि इत्थशाल करने वाला ग्रह अस्त, नीच, शत्रुक्षेत्री, वक्री अथवा अत्यन्त निर्बल हो, तो वह इत्थशाल के फल को उत्पन्न करने में असमर्थ रहता है। इस प्रकार इत्थशाल का प्रभाव निरस्त हो जाता है, जिसे कहा गया ह ’रद्द‘ ै। यह योग कार्यअसफलता और अपेक्षित परिणाम के अभाव का द्योतक है।-

12.दुःफालिकुत्थ योग जब मन्दग्रह स्वक्षेत्र, उच्च या नवमांशादि में स्थित होकर निर्बल शीघ्रगामी ग्रह से इत्थशाल करे, तो दुःफालिकुत्थ योग बनता है। यहाँ मन्दग्रह की स्थैर्यप्रधान शक्ति कार्यसिद्ध-ि सुनिश्चित करती है, यद्यपि परिणाम अपेक्षित से कम भव्य हो सकते हैं।[7]

13.दुत्थोत्थदिवीर योग यदि लग्नेशकार्येश दोनों निर्बल हों–, किन्तु उनमें से कोई एक ग्रह किसी तृतीय, बली ग्रह से इत्थशाल करे (उच्च/स्वक्षेत्री), तो दुत्थोत्थदिवीर योग बनता है। यह पराश्रित सफलता का सूचक हैअर्थात् - अन्य व्यक्ति या बाह्य सहयोग से कार्य सिद्ध होता है।

14.तंबीर योग जब लग्नेश या कार्येश में से कोई एक बली ग्रह राशि के अंतिम अंश में होकर आगामी राशि में प्रवेशोन्मुख हो तथा अन्य ग्रहों को अपने दीप्तांश से प्रभावित करे, तब तंबीर योग बनता है। यह संक्रमणकालीन प्रगति, अवसरविस्तार और तीव्र उन्नति का सूचक है। इसे अत्यन्त शुभ योग माना गया है।-

15.कुत्थ योग यदि लग्नेश और कार्येश दोनों पंचवर्गीय बल, हर्षस्थान या अन्य बलसूचक स्थितियों से समर्थ - हों, तो कुत्थ योग निर्मित होता है। यह उन्नति, प्रतिष्ठा, मानसिक प्रसन्नता और योजनाओं की सिद्धि का संकेत देता है। यह योग स्थायी प्रगति का द्योतक है।

16.दुरुफ योग जब लग्नेशकार्येश दोनों निर्बल-, अस्त, वक्री या अशुभ ग्रहों से पीड़ित हों और प्रतिकूल स्थानों में स्थित होकर राहुसंबंध अथवा अशुभ दृष्टि के साथ इ-त्थशाल करें, तब दुरुफ योग बनता है।[8] यह प्रतिकूल, बाधाजनक और क्लेशप्रद परिणाम देने वाला योग है, जिससे वर्षभर संघर्ष, विघ्न और मानसिक अशांति की सम्भावना रहती है।

ताजिक शास्त्र के ये षोडश योग वर्षफलस्थित-निर्णय की संरचनात्मक रीढ़ हैं। इनका विश्लेषण केवल ग्रह-ि के स्थूल अवलोकन से नहीं, अपितु ग्रहों के गत्यात्मक, अंशगत और बलगत संबंधों की सूक्ष्म परीक्षा से किया जाता है। इस प्रकार ताजिक योगप्रभावित गणनात्मक पद्धति का -ज्योतिष की दार्शनिक पृष्ठभूमि और यवन-तंत्र भारतीय फलित-समन्वित प्रतिफल है, जो वर्षविशेष की घटनात्मक संरचना को सूचित करने में अद्वितीय स्थान रखता है।

'ताजिकएक समीक्षात्मक एवं ऐतिहासिक पुनरावलोकन : परम्परा के प्रवर्त्तक आचार्य '

ताजिक ज्योतिष परम्परा के उद्गम और प्रवर्त्तक आचार्यों के संबंध में उपलब्ध साक्ष्य यह संकेत करते हैं कि यह विद्या भारतीय तथा यवन बौद्धिक परम्पराओं के सघन अंतःसंवाद का परिणाम है। ताजिक (मध्य एशियाई–फारसी–अरबी) शास्त्र के प्रमुख व्याख्याकार गणेश दैवज्ञ ने अपने ग्रन्थ 'ताजिक भूषणम्' में इस परम्परा के आद्य प्रवर्त्तकों का उल्लेख करते हुए गर्ग, यवनाचार्य, सत्याचार्य तथा रोमक आदि ऋषियों का स्मरण किया है।[9] यह नामावली स्वयं इस तथ्य की ओर संकेत करती है कि ताजिक शास्त्र का विकास किसी एक भौगोलिक या सांस्कृतिक केन्द्र तक सीमित न रहकर बहुसांस्कृतिक विमर्श की परिणति है।

भारतीय फलित ज्योतिष की प्राचीन परम्परा में गर्गाचार्य तथा यवनाचार्य का नाम अत्यन्त आदर और प्रामाणिकता के साथ लिया जाता है। विशेषतः –परम्परा ने यूनानी-की संज्ञा इस बात का सूचक है कि भारतीय ज्योतिष 'यवनाचार्य' यवन परम्परा से प्राप्त ज्ञान को आत्मसात् किया। इस ऐतिहासिक तथ्य की पुष्टि शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने अपनी सुप्रसिद्ध कृति 'भारतीय ज्योतिष' में की है, जहाँ वे दामोदरसुत बलभद्रकृत- 'हायनरत्नम्' से यह उद्धरण प्रस्तुत करते हैं— "यवनाचार्येण पारसीक"…भाषया प्रणीतम्-।[10] इस उल्लेख से स्पष्ट होता है कि ताजिक पद्धति के ग्रन्थों की मूल रचना पारसीक भाषा में हुई (फारसी), जिनका बाद में संस्कृत में अनुवाद और पुनराविष्कार किया गया। यह तथ्य ताजिक शास्त्र की यवनउद्गम परम्परा का महत्वपूर्ण ऐतिहासिक साक्ष्य है।-

गणेश दैवज्ञ ने एक उल्लेखनीय टिप्पणी करते हुए कहा है कि— ‘‘यद्यपि यह शास्त्र ब्रह्मद्वेषी यवनों से उत्पन्न हुआ है, तथापि इसमें सदसत्फलनि-रूपण की प्रामाणिकता है; अतः द्विजों को भी इसका अध्ययन करना चाहिए।’’ यह कथन मध्यकालीन सांस्कृतिक मानस का द्योतक है, जिसमें एक ओर धार्मिकसांस्कृतिक भिन्नता का बोध है-, तो दूसरी ओर ज्ञान के वस्तुनिष्ठ मूल्य का स्वीकार भी। यहाँ स्पष्टतः यह प्रतिपादित किया गया है कि ज्ञान की उपयोगिता और प्रामाणिकता उसके सांस्कृतिक स्रोत से अधिक महत्वपूर्ण है। इस प्रकार ताजिक शास्त्र को यवनप्रणीत मानते हुए भी - उसे भारतीय ज्योतिषीय विमर्श में वैध स्थान प्रदान किया गया।

रोमकाचार्य की परम्परा में एक पौराणिक आख्यान भी प्राप्त होता है, जिसके अनुसार जिस ज्योतिषविद्या का उपदेश - ब्रह्मा ने सूर्यदेव को दिया, वही सूर्य द्वारा यवनाचार्य को प्रदत्त हुई और तत्पश्चात् यवनाचार्य ने उसका प्रतिपादन किया, जो नाम से विख्यात हुआ। ’ताजिक‘[11] यह आख्यान केवल दार्शनिक प्रतीक नहीं, बल्कि ज्ञान परम्परा के-सांस्कृतिक वैधीकरण)legitimization) का उदाहरण हैस्रोत से सम्बद्ध कर उसे -अर्थात् किसी बाह्य परम्परा को भी वैदिक-आध्यात्मिक प्रतिष्ठा प्रदान करना।

इसके अतिरिक्त ‘टोडरानन्द’ जैसे ग्रन्थों में खत, खुत, रोमक, हिल्लाज, धिषण तथा दुर्मुखाचार्य आदि को ताजिक शास्त्र के प्रवर्त्तक आचार्य के रूप में उल्लिखित किया गया है। इन नामों का भाषिक स्वरूप स्वयं उनके अरबीफारसी – मूल की ओर संकेत करता है। इससे यह निष्कर्ष पुष्ट होता है कि ताजिक शास्त्र का विकास बहुधा इस्लामी ज्योतिषीय परम्परा के अंतःक्र-परम्परा और भारतीय फलितियात्मक संवाद से हुआ।

समग्रतः देखा जाए तो ताजिक शास्त्र के प्रवर्त्तकों के विषय में उपलब्ध साक्ष्य एक बहुस्तरीय ऐतिहासिक प्रक्रिया का संकेत करते हैं-

1. यवनपारसीक ज्योतिषीय ग्रन्थों की रचना/,
2. उनका संस्कृत में अनुवाद एवं रूपान्तरण,
3. भारतीय फलित सिद्धान्तों के साथ उनका समन्वय, तथा
4. आचार्यों द्वारा उसका शास्त्रीय पुनर्प्रतिपादन।

अतः परम्परा को न तो पूर्णतः विदेशी कहा जा सकता है और न ही पूर्णतः स्वदेशी ’ताजिक‘; यह भारतीय ज्योतिष के इतिहास में सांस्कृतिक संश्लेषण का एक विशिष्ट अध्याय है, जहाँ ज्ञान की सार्वभौमिकता ने सांस्कृतिक सीमाओं का अतिक्रमण कर एक नवीन ज्योतिषीय पद्धति का सृजन किया।

ताजिक शास्त्र के अनुसार राशि स्वामी

ताजिक शास्त्र के अनुसार राशियों के स्वामी ग्रह इस प्रकार हैं - मेष - मंगल, वृष-शुक्र, मिथुन-बुध, कर्क-चन्द्रमा, सिंह-सूर्य, कन्या-बुध, तुला-शुक्र, वृश्चिक-मंगल, धनु-गुरु, मकर-शनि, कुंभ-शनि, मीन-बृहस्पति।[12] अर्थात् सूर्य व चन्द्र एक-एक राशि के अधिपति हैं जबकि शेष ग्रहों को दो-दो राशियों का आधिपत्य प्राप्त है।

नवीन दशम ग्रह ’मुंथा‘: ताजिक परिप्रेक्ष्य में एक विशिष्ट संकल्पना ताजिक ज्योतिष परंपरा की सर्वाधिक मौलिक और सृजनात्मक अवधारणाओं में -का सिद्धान्त विशेष उल्लेखनीय है। यह भारतीय पारम्परिक नवग्रह ’मुंथा‘ रचना है-व्यवस्था से भिन्न एक स्वतंत्र विचार, जिसे ताजिक आचार्यों ने वर्षफलनिर्णय की प्रक्रिया में अत्यन्त केंद्रीय - स्थान प्रदान किया है। जिस प्ऱकार पारम्परिक फलित ज्योतिष में नवग्रह जातक के जीवनप्रवाह के नियामक माने - जाते हैं, उसी प्रकार ताजिक शास्त्र में के रूप में मान्यता दी गई है।मुंथा का निर्धारण ’दशम ग्रह‘ को प्रतीकात्मक ’मुंथा‘ जन्मलग्न से होता है। जन्मकालीन लग्न ही प्रथम वर्ष की मुंथा मानी जाती है। इसके पश्चात् प्रत्येक वर्ष मुंथा एक राशि आगे अग्रसर होती है; अर्थात् एक वर्ष में मुंथा एक राशि का परिभ्रमण करती है। गणनात्मक दृष्टि से एक मास में यह 2°30′ (२ अंश ३० कला तथा एक दिन में (5 कला की गति से संचरित मानी गई है। इस प्रकार मुंथा की राशि प्रतिवर्ष परिवर्तित होती रहती है, परन्तु जन्मलग्न के अंश स्थिर रहते हैं यही इसकी गणनात्मक विशेषता है।

जिस राशि में किसी वर्ष मुंथा स्थित होती है, उस राशि का अधिपति ‘मुन्थेश’ कहलाता है।[13] वर्षफल-निर्णय में मुन्थेश की स्थिति, बल, दृष्टि तथा योग-संबंध अत्यन्त निर्णायक माने गए हैं। वस्तुतः मुंथा वार्षिक जीवन-ऊर्जा का द्योतक है; यह उस वर्ष जातक के जीवन-केन्द्र (focus of experience) का सूचक बनती है। इस प्रकार मुंथा ताजिक प्रणाली में कालगत परिवर्तनशीलता और जीवनगत गतिशीलता का प्रतीकात्मक गणितीय रूप है, जो वर्षफल को जन्मपत्रिका से पृथक् एक स्वतंत्र विश्लेषणात्मक आधार प्रदान करता है।

ताजिक ज्योतिष में ग्रहदृष्टि का सिद्धान्त ताजिक शास्त्र में ग्रहों की दृष्टि (aspect) की अवधारणा भारतीय पारम्परिक पाराशरी दृष्टि-सिद्धान्त से सर्वथा भिन्न है। यहाँ दृष्टि को केवल दार्शनिक या प्रतीकात्मक सम्बन्ध न मानकर, वार्षिक फलनिर्णय का व्यावहारिक एवं अनिवार्य उपकरण माना गया है। ताजिक ग्रंथों विशेषतः ताजिकालंकारमें स्पष्ट कहा गया है कि वर्षफल का सम्पूर्ण शुभाशुभ निर्णय ग्रहों की पारस्परिक दृष्टि पर आधारित है; दृष्टि-विचार के अभाव में वर्षफलादेश अपूर्ण और अवैज्ञानिक माना जाएगा।

ताजिक मतानुसार ग्रह अपनी दृष्टि की शक्ति (orbital proximity) के अनुसार ही फल प्रदान करते हैं[14]। दृष्टि का प्रभाव तभी मान्य है जब द्रष्टा (aspecting planet) और दृश्य (aspected planet) के मध्य 12 अंश का अंतर हो। 12 अंश से अधिक दूरी होने पर दृष्टि का प्रभाव क्षीण अथवा निष्प्रभावी माना गया है। इस प्रकार ताजिक प्रणाली में दृष्टि की संकल्पना अंशगत समीपता (orb of influence) पर आधारित है, जो इसे अधिक गणनात्मक एवं प्रायोगिक स्वरूप प्रदान करती है।

दृष्टि के प्रकार ताजिक शास्त्र में दृष्टियों को चार स्तरों में वर्गीकृत किया गया है-पाद, अर्ध, त्रिपाद और पूर्ण दृष्टि। प्रत्येक ग्रह निम्नलिखित भावों पर दृष्टि डालता है-

तृतीय एवं एकादश भाव – एक पाद दृष्टि

चतुर्थ एवं दशम भाव – अर्ध दृष्टि

पंचम एवं नवम भाव – त्रिपाद दृष्टि

प्रथम एवं सप्तम भाव – पूर्ण दृष्टि[15]

इन दृष्टियों के फलस्वरूप भिन्न-भिन्न प्रकार के फल उत्पन्न होते हैं-

पाद दृष्टि को सामान्यतः सुख, लाभ, स्नेह और बुद्धिवृद्धि प्रदान करने वाली माना गया है।

अर्ध दृष्टि प्रायः गुप्त विरोध, मतभेद अथवा आन्तरिक तनाव का कारण बनती है।

त्रिपाद दृष्टि धन, सौख्य, मित्रवृद्धि तथा उपलब्धि की कारक मानी गई है।

पूर्ण दृष्टि संघर्ष, प्रत्यक्ष विरोध, विवाद और शत्रुता की सूचक है।

दृष्टि का भावात्मक वर्गीकरण ताजिक परंपरा दृष्टियों को केवल गणितीय स्तर पर नहीं, बल्कि भावात्मक-मानसिक स्तर पर भी वर्गीकृत करती है। इस आधार पर दृष्टियाँ चार प्रकार की मानी गई हैं-

प्रत्यक्ष स्नेह दृष्टि – पंचम एवं नवम भावगत ग्रहों पर पड़ने वाली दृष्टि। यह प्रबल, समन्वयकारी, मैत्रीपूर्ण और सिद्धिप्रदा मानी गई है।

गुप्त स्नेह दृष्टि – तृतीय एवं एकादश भावगत ग्रहों पर दृष्टि। यह सहयोग प्रदान करती है, किन्तु प्रत्यक्ष स्नेह की अपेक्षा कम प्रभावशाली होती है।

प्रत्यक्ष शत्रु दृष्टि – प्रथम एवं सप्तम भावगत ग्रहों पर दृष्टि। यह प्रत्यक्ष विरोध, संघर्ष और विघ्न का कारण बनती है।

गुप्त शत्रु दृष्टि – चतुर्थ एवं दशम भावगत ग्रहों पर दृष्टि। यह अप्रकट बाधाओं, अंतर्विरोधों और अप्रत्यक्ष तनाव का संकेत देती है।[16]

इस वर्गीकरण से स्पष्ट होता है कि ताजिक ज्योतिष में दृष्टि केवल ज्यामितीय कोण नहीं, बल्कि एक प्रकार की 'ऊर्जा-संवाद प्रक्रिया' है, जो ग्रहों के मध्य संबंध की मनोवैज्ञानिक और सामाजिक प्रकृति को भी इंगित करती है।

ताजिक शास्त्र में ग्रह-मैत्री का सिद्धान्त

ताजिक ज्योतिष में ग्रहों के परस्पर संबंधों का विवेचन केवल स्थूल शुभाशुभ वर्गीकरण तक सीमित नहीं है, अपितु यह एक सुव्यवस्थित संबंध-सिद्धान्त (Relational Doctrine) के रूप में विकसित हुआ है। इस परंपरा में ग्रहों की *नैसर्गिक* (स्वभावगत) तथा *तात्कालिक* (परिस्थितिजन्य) मैत्री-दोनों का विशद निरूपण प्राप्त होता है, जो वर्षफल-निर्णय में अत्यंत निर्णायक भूमिका निभाते हैं।

(1) नैसर्गिक ग्रह-मैत्री

ताजिक ग्रंथों के अनुसार ग्रहों की स्वभावगत या नैसर्गिक मैत्री दो प्रमुख समूहों में विभाजित है-

- **सूर्य, चन्द्र, मंगल एवं गुरु** - ये परस्पर मित्र माने गए हैं।
- **बुध, शुक्र एवं शनि** - ये भी परस्पर मैत्री-संबंध से युक्त हैं।[17]

इन दो समूहों के अतिरिक्त जो भी ग्रह एक-दूसरे के साथ संबंध स्थापित करते हैं, वे पारस्परिक शत्रुता की श्रेणी में रखे जाते हैं।

यह वर्गीकरण भारतीय पाराशरी परंपरा से भिन्न है, जहाँ प्रत्येक ग्रह की पृथक-पृथक मित्रता-शत्रुता का विस्तार से उल्लेख मिलता है। ताजिक प्रणाली में यह द्विभाजित संरचना संभवतः ग्रहों के दार्शनिक-प्रतीकात्मक स्वभाव पर आधारित है-प्रथम समूह अग्नि-तेज और धर्मप्रधान ग्रहों का प्रतिनिधित्व करता है, जबकि द्वितीय समूह सांसारिक, लौकिक और व्यवहारगत प्रवृत्तियों से संबद्ध ग्रहों का। इस प्रकार ताजिक मैत्री-सिद्धान्त ग्रहों के ऊर्जात्मक समूहों (Energetic Clusters) की अवधारणा को प्रस्तुत करता है।

(2) तात्कालिक या परिस्थितिजन्य मैत्री

नैसर्गिक संबंधों के अतिरिक्त ताजिक शास्त्र में *तात्कालिक मैत्री* का भी विशद प्रतिपादन है, जो ग्रहों की परस्पर दृष्टि-संबंध पर आधारित है। यहाँ संबंध स्थायी न होकर, उस विशिष्ट वर्ष की ग्रह-स्थिति पर निर्भर होता है।

- यदि कोई ग्रह दूसरे ग्रह को 5वें, 9वें, 3रे या 11वें स्थान से *मित्रदृष्टि* (स्नेहात्मक दृष्टि) से देखता है, तो वह उस वर्ष उस ग्रह का *मित्र* माना जाता है।
- इसके विपरीत, यदि कोई ग्रह 1वें, 4थे, 7वें या 10वें स्थान से *शत्रु-दृष्टि* स्थापित करता है, तो वह उस ग्रह का *शत्रु* समझा जाता है।
- यदि दो ग्रह परस्पर 2, 6, 8 या 12 स्थानों पर स्थित हों और उपर्युक्त प्रकार की न तो स्नेह-दृष्टि हो न शत्रु-दृष्टि, तो उनके मध्य *समत्व* (Neutrality) की स्थिति मानी जाती है।[18]

यह तात्कालिक मैत्री-सिद्धान्त ताजिक प्रणाली की विशिष्ट गतिशीलता को रेखांकित करता है। यहाँ संबंध स्थिर नहीं, बल्कि काल-विशेष की संरचना पर निर्भर है। इस प्रकार ग्रहों के मध्य संबंध एक प्रकार की 'वार्षिक कूटनीति' (Annual Celestial Diplomacy) के रूप में कार्य करते हैं, जो वर्षफल के सूक्ष्म निर्धारण में सहायक होते हैं।

ताजिक शास्त्र में ग्रहों के दीप्तांश- ताजिक ज्योतिष की एक अन्य मौलिक अवधारणा *दीप्तांश* (Orb of Illumination/Influence) का सिद्धान्त है। वर्षफल-निर्णय में ग्रहों की दृष्टि केवल भावगत स्थिति से ही नहीं, बल्कि उनके प्रभाव-क्षेत्र (orbital range) से भी निर्धारित होती है। इसी प्रभाव-परिधि को 'दीप्तांश' कहा गया है।

प्रत्येक ग्रह का एक निश्चित दीप्तांश माना गया है[19]-

- सूर्य -15 अंश

- चन्द्र -12 अंश
- मंगल - 8 अंश
- बुध -7 अंश
- गुरु - 9 अंश
- शुक्र - 7 अंश
- शनि - 9 अंश

कोई भी ग्रह अपने से आगे या पीछे निर्दिष्ट दीप्तांश की सीमा के भीतर ही विशेष या प्रबल दृष्टि-फल प्रदान करता है। यदि ग्रह इस सीमा का अतिक्रमण कर ले, तो उसका प्रभाव सामान्य दृष्टि-फल तक सीमित हो जाता है।

दीप्तांश की यह संकल्पना ताजिक शास्त्र को एक विशिष्ट गणनात्मक-सूक्ष्मता प्रदान करती है। यह प्रणाली ग्रहों के प्रभाव को निरपेक्ष न मानकर, परिमाणात्मक (Quantifiable) मानकों में परिभाषित करती है।

दीप्तांश का संयुक्त विचार

वर्षफल में विशेष रूप से *लग्नेश* तथा *कार्येश* (जिस भाव का फल विचाराधीन हो, उसका अधिपति) के दीप्तांशों का संयुक्त विचार किया जाता है। इन दोनों ग्रहों के दीप्तांशों को जोड़कर उसका आधा किया जाता है; प्राप्त संख्या के भीतर यदि दोनों ग्रहों का परस्पर अंशांतर हो, तो वे प्रभावी और बली माने जाते हैं।

उदाहरणार्थ, यदि लग्नेश का दीप्तांश 12 अंश और कार्येश का 8 अंश है, तो उनका योग 20 अंश हुआ। इसका आधा 10 अंश होगा। यदि दोनों ग्रहों के मध्य वास्तविक अंशांतर 10 अंश या उससे कम है, तो वे परस्पर प्रभावी (operative) माने जाएंगे।इस प्रकार दीप्तांश का सिद्धान्त ताजिक ज्योतिष को अत्यंत सूक्ष्म और वैज्ञानिक संरचना प्रदान करता है, जहाँ ग्रहों का प्रभाव केवल भावगत या दृष्टिगत संबंध पर निर्भर नहीं, बल्कि उनके अंशगत समीपत्व पर भी आधारित होता है।

ग्रह-मैत्री और दीप्तांश-दोनों ही ताजिक शास्त्र की विशिष्ट विश्लेषणात्मक पद्धतियाँ हैं। जहाँ ग्रह-मैत्री संबंधों के मनोवैज्ञानिक एवं ऊर्जात्मक आयाम को उद्घाटित करती है, वहीं दीप्तांश उनकी प्रभाव-सीमा का गणनात्मक निर्धारण करता है। इन दोनों सिद्धांतों का समन्वित अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि ताजिक ज्योतिष केवल पारम्परिक सिद्धांतों का अनुवर्तन नहीं करता, बल्कि एक स्वतंत्र, संरचित और सूक्ष्म ज्योतिषीय प्रणाली के रूप में विकसित हुआ है, जिसमें गणितीय परिशुद्धता और संबंधात्मक विश्लेषण-दोनों का समुचित संतुलन विद्यमान है।

अतः ताजिक शास्त्र को न तो केवल ‘विदेशीय प्रभाव’ का परिणाम कहा जा सकता है और न ही उसे पूर्णतः भारतीय परम्परा में विलीन किया जा सकता है। यह वस्तुतः सांस्कृतिक संश्लेषण (cultural synthesis) का एक दैदीप्यमान उदाहरण है, जहाँ ज्ञान-परम्पराएँ भौगोलिक सीमाओं का अतिक्रमण कर एक नवीन शास्त्रीय संरचना का सृजन करती हैं।

इस प्रकार भारतीय ज्योतिष और ताजिक शास्त्र का पारस्परिक विनिमय केवल ऐतिहासिक तथ्य नहीं, बल्कि ज्ञान की सार्वभौमिकता और बौद्धिक सह-अस्तित्व का दार्शनिक प्रमाण है। यह अध्ययन न केवल ज्योतिषीय परम्पराओं की तुलनात्मक समझ को समृद्ध करता है, अपितु मध्यकालीन भारत और मध्य एशिया के सांस्कृतिक संवाद के इतिहास को भी एक नवीन परिप्रेक्ष्य प्रदान करता है।

सन्दर्भ

1. दीक्षित शंकरबालकृष्ण,भारतीय ज्योतिष,पृष्ठ 643
2. ताजिकभूषणम् ;4/4-6
3. ताजिक नीलकंठी ;संज्ञातंत्र ,षोडश योगाध्याय,श्लोक-17
4. ताजिक भूषणम्;4/8
5. ताजिकनीलकंठी ;संज्ञा तन्त्र,षोडश योगाध्याय,श्लोक-55
6. वर्षयोग समूह;श्लोक-167
7. वर्षभास्कर;षोडशयोगप्रकरण,श्लोक-25
8. ताजिकभूषणम्;4/30
9. जोशी देवीदत्त,सुगम ज्योतिष,,पृष्ठ37
10. दीक्षित शंकर बालकृष्ण,भारतीय ज्योतिष,पृष्ठ 642
11. वृहद्दैवज्ञरञ्जनम्;1/9
12. ताजिक भूषणम्;1/22
13. वहीं;1/11
14. वर्षपद्धति;द्वितीय प्रकरण,दृष्टि विचार,श्लोक1-2
15. ताजिक भूषणम्;1/14
16. वर्ष पद्धति;द्वितीय प्रकरण,दृष्टिफल,शोक-5
17. शास्त्री सुदर्शनाचार्य ,ताजिक विज्ञान,पृष्ठ-66
18. ताजिक भास्कर;पृष्ठ-5
19. ताजिकभूषणम्;4/3